PAPER III

भारतीय विचारकों के अनुसार पुरुषार्थ चार हैं

वे चार पुरुषार्थ हैं
(1) धर्म (2) अर्थ (3) काम और (4) मोक्ष।

(1) धर्म → धर्म का अर्थ है "धारण करना"। धरती धारयति या लोकम् इति धर्मः" अर्थात "जो संसार को धारण करे वह धर्म है।" धर्म की एक और सुपरिचित परिभाषा है "ध्रियते यः स धर्मः" अर्थात "जो धारण किया जाए वह धर्म है।" तपस्वियों के लिए धारणा और ध्यान ही श्रेष्ठ है और भक्तों के लिए परमेश्वर की प्रार्थना से बढ़कर कुछ नहीं- इसे ही योग में ईश्वर प्राणिधान कहा गया है- यही संध्योपासना है। धर्म इसी से प्रकट होता है। पुण्य इसी से अर्जित होता है। इसी से मोक्ष जाता है साधा जाता है।

(2) अर्थ - अर्थ से तात्पर्य है जिसके द्वारा भौतिक सुख- समृद्धि की सिद्धि होती है। भौतिक सुखों से मुक्ति के लिए भौतिक सुख होना जरूरी है। ऐसा कर्म करो जिससे अर्थोपार्जन हो। अर्थोपार्जन से ही काम साधा जाता है।

(3) काम - संसार के जितने भी सुख कहे गए हैं वे सभी काम के अंतर्गत आते हैं। जिन सुखों से व्यक्ति का शारीरिक और मानसिक पतन होता है या जिनसे परिवार और समाज को तकलीफ होती है ऐसे सुखों को वर्जित माना गया है। अर्थ का उपयोग शरीर, मन, परिवार, समाज और राष्ट्र को

पूरा करने के लिए होना चाहिए। भोग और संभोग की अत्यधिकता से शोक और रोगों की उत्पत्ति होती है। दोनों के लिए ही समय और नियम नियुक्त है।

(4) मोक्ष → मोक्ष का अर्थ है पदार्थ से मुक्ति। इसे ही योग समाधि कहता है। यही ब्रह्मज्ञान है और यही आत्मज्ञान भी। ऐसे मोक्ष में स्थित व्यक्ति को ही कृष्ण स्थित प्रज्ञ कहते हैं। हिंदूजन ऐसे को ही भगवान, जैन अरिहंत और बौद्ध संबुद्ध कहते हैं। यही मोक्ष, कैवल्य, निर्वाण या समाधि कहलाता है। मोक्ष की प्राप्ति प्रत्येक मनुष्य का स्वभाव है। यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण पुरुषार्थ है। सांसारिक व्यामोह से मुक्त होना ही मोक्ष है। मोक्ष की अवस्था वह अवस्था है जिसमें सारे दुःख नष्ट हो जाते हैं। मोक्ष के स्वरूप के संबंध में विभिन्न विचारकों में मत-भिन्नता भी है।

— X —

PAPER III

नीतिशास्त्र का स्वरूप

नीतिशास्त्र दर्शनशास्त्र की वह मुख्य शाखा है जो समाज द्वारा प्रतिस्थापित मानदंड एवं नैतिक सिद्धांतों के परिप्रेक्ष्य में उचित और अनुचित मानवीय कृत्यों एवं आचरण का अध्ययन करता है। यूनानी शब्द Ethikos से उत्पन्न नीतिशास्त्र (Ethics) हुआ है।

नीतिशास्त्र जिसे व्यवहार दर्शन नीतिदर्शन, नीतिविज्ञान और आचारशास्त्र भी कहते हैं, दर्शन की एक शाखा है। आचारशास्त्र की परिभाषा तथा क्षेत्र प्रत्येक युग में मतभेद के विषय रहे हैं, फिर भी व्यापक रूप से यह कहा जा सकता है कि आचारशास्त्र में उन सामान्य सिद्धांतों का विवेचन होता है जिनके आधार पर मानवीय क्रियाओं और और उद्देश्यों का मूल्यांकन संभव हो सके। अधिकतर लेखक और इस बात से भी सहमत हैं कि आचारशास्त्र का संबंध मुख्यतः मानदंडों और मूल्यों से है, न कि वस्तुस्थितियों ~~के~~ अध्ययन या खोज से। इन मानदंडों का प्रयोग न केवल व्यक्तिगत जीवन के विश्लेषण में किया जाना चाहिए वरन् सामाजिक जीवन के विश्लेषण में भी। नीतिशास्त्र मानव को सही निर्णय लेने की क्षमता विकसित करता है।

अच्छा और बुरा, सही और गलत, गुण और दोष, न्याय और धर्म जैसी अवधारणाओं को परिभाषित करके, नीतिशास्त्र मानवीय नैतिकता के प्रश्नों को सुलझाने का प्रयास करता है।

नीतिशास्त्र में अध्ययन के तीन प्रमुख क्षेत्र हैं जिन्हें मान्यता प्राप्त है :-

(1) मेटा-नीतिशास्त्र → जिसका संबंध नैतिक प्रस्थापनाओं के सैद्धान्तिक ~~अर्थ~~ अर्थ और संदर्भ से है, और कैसे उनके सत्य मूल्य निर्धारित किये जा सकते हैं।

(2) मानदण्डक नीतिशास्त्र → जिसका संबंध किसी नैतिक कार्य पथ के निर्धारण के व्यावहारिक तरीकों से है।

(3) अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र → जिसका संबंध इस बात से है कि किसी विशिष्ट स्थिति या क्रिया के किसी अनुदेश में किसी व्यक्ति को क्या करना चाहिए।

रश्वर्थ कीडर कहते हैं कि 'नीतिशास्त्र' की मानक परिभाषाओं में 'आदर्श मानव चरित्र का विज्ञान' या 'नैतिक कर्तव्य का विज्ञान' आम तौर पर शामिल रहे हैं।

लिंडा एल्डर की परिभाषा के अनुसार, नीतिशास्त्र एक कल्पनाओं और सिद्धान्तों का समुच्चय है, जो कौन सा व्यवहार संवेदन-समर्थ जीवों की मदद करता है या उन्हें नुकसान पहुँचाता है, ये निर्धारित करने में हमारा मार्गदर्शन करता है।

— x —

कर्णय के को

नीतिशास्त्र को हम आचारशास्त्र, कर्तव्य शास्त्र, एथिक्स आदि नामों से जानते हैं।

विलियम लिली के अनुसार नीतिशास्त्र समाज में रहनेवाले मनुष्य के आचरण का आदर्शमूलक सिद्धांत है।

जी ई० मूर के अनुसार नीतिशास्त्र परम शुभ का अनुमान है।

नितिशास्त्र का मुख्य विषय आचरण है। नितिशास्त्र में मनुष्य के मानसिक जीवन के तीन पहलू हैं

(i) ज्ञान
(ii) संवेग और
(iii) क्रिया

आधुनिक नीतिशास्त्रियों का मत है कि नीतिशास्त्र एक कोरा सैद्धान्तिक शास्त्र है। लेकिन नीतिशास्त्र मुख्य रूप से क्रियात्मक शास्त्र है क्योंकि इसमें ज्ञान की अपेक्षा क्रिया की प्रधानता होती है। इसमें आदर्शों का अध्ययन होता है। इसलिए इसे मानकीय शास्त्र भी कहते है। नीतिशास्त्र कला नहीं है यह क्रियात्मक विज्ञान है। यह ज्ञान और दर्शन दोनों है। नीतिशास्त्र का मुख्य उद्देश्य मनुष्य को नैतिक नियमों की शिक्षा देना है।

नीतिशास्त्र वह मानकीय अथवा आदर्शमूलक विज्ञान है।

नैतिक निर्णय क्या है?

नैतिक निर्णय यह एक विशिष्ट स्थिति में किए जाने की आवश्यकता के बारे में सही ढ़ंग से तर्क करने की क्षमता है। यह निर्णय मनुष्यों को निर्णय लेने और निर्णय लेने की अनुमति देता है कि क्या अच्छा है और क्या गलत है। कार्रवाई में नैतिक निर्णय राय या निर्णय के माध्यम से व्यक्त किया जाता है जो आपके निर्णय का समर्थन करते हैं। नैतिकता सिद्धान्तों और विश्वासों का एक समूह है जो सही और गलत व्यवहार से संबंधित है।

नैतिक निर्णय एक ऐसा वाक्य है जिसका नैतिक मूल्य या कार्रवाई की गुणवत्ता के साथ क्या करना है। एक मूल्य निर्णय हमारे कार्यों के सही या गलत होने का आकलन करता है।

जब एक नैतिक निर्णय का विश्लेषण किया जाता है तो यह पाया जा सकता है कि इसमें एक विषय शामिल है जो न्याय करेगा। एक वस्तु जिसका न्याय आंका जाएगा, और एक मानक जिसके अनुसार विषय की कार्रवाई का न्याय किया जाएगा।

नैतिक निर्णय आदतन स्वैच्छिक कार्यों के नैतिक गुणवत्ता का निर्णय है। आमतौर पर एक नैतिक निर्णय एक तर्कसंगत मनुष्य के ~~सामने~~ सामान्य स्वैच्छिक कार्यों में दिया जाता है।

तर्कसंगत व्यक्ति के स्वैच्छिक कार्यों में विचार - विमर्श, निर्णय और संकल्प शामिल है। इस कारण से उसके पास सही या गलत होने का गुण है।

नैतिक मानक के संदर्भ में कार्यों को अच्छा और बुरा माना जाता है। इस मानक के आधार पर नैतिक निर्णय दिया जाता है।

— X —

PAPER III

नैतिक निर्णय की विशेषताएँ

नैतिक निर्णय यह एक विशिष्ट स्थिति में किए जाने की आवश्यकता के बारे में सही ढंग से तर्क करने की क्षमता है। यह निर्णय मनुष्यों को निर्णय लेने और निर्णय लेने की अनुमति देता है कि क्या अच्छा है या क्या गलत है,

कार्रवाई में नैतिक निर्णय का समर्थन करते हैं। नैतिकता सिद्धांतो और विश्वासों का एक समूह है जो सही और गलत व्यवहार से संबंधित है।

नैतिक निर्णय एक ऐसा वाक्य है जिसका नैतिक मूल्य या कार्रवाई की गुणवत्ता के साथ क्या करना है। एक मूल्य निर्णय हमारे कार्यों के सही या गलत होने का आकलन करता है।

जब एक नैतिक निर्णय का विश्लेषण किया जाता है, तो यह पाया जा सकता है कि इसमें एक ~~विशेष~~ विषय शामिल है जो न्याय करेगा। एक वस्तु जिसका न्याय आंका जाएगा, और एक मानक जिसके अनुसार विषय की कार्रवाई का न्याय किया जाएगा।

नैतिक निर्णय आदतन स्वैच्छिक कार्यों के नैतिक गुणवत्ता का निर्णय है। आमतौर पर एक नैतिक निर्णय एक तर्कसंगत मनुष्य के सामान्य स्वैच्छिक कार्यों में दिया जाता है।

तर्कसंगत व्यक्ति के स्वैच्छिक कार्यों में विचार-विमर्श, निर्णय और संकल्प शामिल है, इस कारण से उनके

पास सही या गलत होने का गुण है।

नैतिक मानक के संदर्भ में कार्यों को अच्छा या बुरा माना जाता है। इस मानक के आधार पर नैतिक निर्णय दिया जाता है।

नैतिक निर्णय एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें कोई व्यक्ति क्या गलत है, क्या अच्छा है, क्या अच्छा है क्या बुरा है, क्या पागल है, क्या असली है, क्या नैतिक है, क्या है अनैतिक, तटस्थ क्या है, आदि।

आप कह सकते हैं कि किसी भी निर्णय से दूसरे व्यक्ति को प्रभावित करने की क्षमता एक नैतिक निर्णय है।

जिन मानकों के साथ ये मूल्य निर्णय किए जाते हैं, वे मौलिक रूप से मानवीय दृष्टिकोण पर आधारित होते हैं।

जो कुछ अच्छा है उसका एक मानक सांप्रदायिक सामूहिक चेतना द्वारा गठित एक आदर्श के ~~साथ~~ एक स्थापित तर्कसंगत सहमति के माध्यम से स्थापित होता है।

नैतिक निर्णय में कुछ अंतर्ज्ञान भी शामिल हो सकते हैं, यह आंतरिक भावना या भावना कि चीजें सही या गलत हैं। नैतिक निर्णयों के विषय को गहरा करने के लिए नैतिकता का अध्ययन करना आवश्यक है।

यह कहा जा सकता है कि नैतिक निर्णय अनिवार्य है। हम इसे निभाना नैतिक दायित्व समझते हैं।

—— X ——

PAPER III

प्रकृतिवाद

प्रकृतिवाद पाश्चात्य दर्शन की वह विचारधारा है जो प्रकृति को मूल तत्व मानती है, इसी को इस ब्रह्माण्ड का कर्ता एवं उपादान मानती है। यह वह 'विचार' या 'मान्यता' है कि विश्व में केवल प्राकृतिक नियम ही कार्य करते हैं न कि कोई अतिप्राकृतिक या आध्यात्मिक नियम। अर्थात् प्राकृतिक संसार के परे कुछ भी नहीं है। प्रकृतिवादी आत्मा - परमात्मा, स्पष्ट प्रयोजन आदि की सत्ता में विश्वास नहीं करते।

यूनानी दार्शनिक थेल्स का नाम सबसे पहले प्रकृतिवादियों में आता है जिसने इस सृष्टि की रचना जल से सिद्ध करने का प्रयास किया था किन्तु स्वतंत्र दर्शन के रूप में इसका बीजारोपण डिमोक्रीटस ने किया।

प्रकृतिवादी विचारक बुद्धि को विशेष महत्व देते हैं परन्तु उनका विचार है कि बुद्धि का कार्य केवल वाह्य परिस्थितियों तथा विचारों को काबू में लाना है जो उसकी शक्ति से बाहर जन्म लेते हैं। इस प्रकार प्रकृतिवादी आत्मा - परमात्मा, स्पष्ट प्रयोजन इत्यादि की सत्ता में विश्वास नहीं करते हैं। प्रो० सोर्ले का विचार है कि प्रकृतिवाद

वह विचारधारा है जिसके अनुसार स्वाभाविक अथवा निर्माण की शक्ति मनुष्य के शरीर को नहीं दी जा सकती। प्रकृतिवाद सभ्य सभ्यता की जटिलता की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप समाज के सम्मुख उपस्थित हुआ।

'प्रकृति' के अर्थ के संबंध में दार्शनिकों में मतभेद रहा है। एडम्स के अनुसार यह शब्द अत्यंत जटिल है जिसकी अस्पष्टता के कारण ही अनेक भूलें होती हैं। 'प्रकृति' को तीन प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है। प्रथम अर्थ में प्रकृति का तात्पर्य उस विशेष गुण से है जो मानव जीवन को विकास एवं उन्नति की ओर ले जाने में सहायक होते हैं। सर्वप्रथम रूसो ने ही प्रकृति के इस अर्थ से अवगत कराया। जिसके आधार पर डॉ० हाल ने 'बाल केन्द्रित शिक्षा' का स्वरूप विकसित किया। अतः प्रथम अर्थ में प्रकृति का तात्पर्य मानव स्वभाव से लिया जाता है। 'प्रकृति' का द्वितीय अर्थ 'बनावट के ठीक विपरीत' बताया गया। अर्थात् जिस कार्य में मनुष्य ने सहयोग न किया हो वही प्राकृतिक है। 'प्रकृति' के तीसरे अर्थ के अनुसार 'समस्त विश्व' की प्रकृति है तथा शिक्षा के अनुसार इसका तात्पर्य विश्व की क्रिया का अध्ययन तथा उसे जीवन

मे उतारने से है । कुछ विज्ञान
मानते हैं कि मनुष्य को प्रकृति की
विकासवादी प्रक्रिया श्रृंखला मे बाधक
नहीं बनना चाहिएं । चूँकि विकास
किसी व्यक्ति के बिना नहीं हो
सकता है, व्यक्ति बिना प्रयोजन
कार्य नहीं कर सकता, इसलिए
कुछ विज्ञान ऐसा मानते हैं कि
इस विकास के नियम का अध्ययन
करना चाहिए तथा प्रकृति का
अनुयायी हो जाना चाहिए।

इस प्रकार स्पष्ट है कि
'प्रकृति' के अर्थ के संबंध मे
मतैक्य नहीं है । प्राचीन सिद्धांत
के अनुसार वह मार्ग जिसमें
व्यक्ति जीवन मे अधिक मूल्यों
की प्राप्ति कर सकता है, वह है
अपने जीवन का प्रकृति के साथ
यथा संभव निकट संबंध स्थापित
करना । यह विचार डेमोक्रीट्स,
एपीक्यूरस तथा ल्युक्रिटियस के
विचारों से साम्य रखते हैं ।
ये सभी विज्ञान सामान्यतः
ऐसे जीवन की प्राप्ति की कामना
रखते थे जो यथा संभव कष्ट
एवं पीड़ा से मुक्त हो । अधिकांश
प्रकृतिवादियों ने सर्वोच्च श्रेय का
विवेचन करते हुए उसे श्रेय एवं
शाश्वत सुख माना है । इस आधार
पर यह कहा जा सकता है
कि प्रकृतिवाद का नीतिशास्त्र
सुखवादी है ।

—x—

PAPER III

इंद्रियानुभववाद या अनुभववाद

इंद्रियानुभववाद या अनुभववाद एक दार्शनिक सिद्धांत है जिसमें इंद्रियों को ज्ञान का माध्यम माना जाता है। इंद्रियानुभववाद के अनुसार, इंद्रियों से प्राप्त होनेवाला अनुभव अथवा किसी भी रूप में होनेवाला अनुभव ही ज्ञान का और हमारे संप्रत्ययों का एकमात्र अंतिम आधार है।

इस वाद के अनुसार प्रत्यक्षीकरण, संवेदनाओं और प्रतिमाओं का साहचर्य है। हॉब्स और लॉक की परम्परा के अनुभववादियों ने स्थापना की कि मनःस्थिति जन्मजात न होकर अनुभव-जन्य होती है। बर्कले ने प्रथम बार यह प्रमाणित करने का प्रयास किया कि मूलतः अनुभव में स्पर्श और दृश्य संस्कारों के साथ सहचरित हो जानेवाले पदार्थों की गति का प्रत्यक्ष आधारित रहता है।

अनुभववाद के प्रमुख समर्थक हॉब्स, बर्कले, ह्यूम तथा हार्टले हैं। फ्रांस में कांडीलिक, लामेट्री और बोनें, स्काटलैंड में रीड, डेविड ह्यूम और थामस ब्राउन तथा इंगलैंड में जेम्स मिल, जॉन स्टूवर्ट मिल एवं बेन का ~~समर्थक~~ समर्थन इस वाद को मिला। सर चार्ल्स बुल, जोहनेस मिलर, हैलर, लॉट्ज और वुंट इत्यादि उन्नीसवीं सदी के दैहिक मनोवैज्ञानिकों

ने अनुभववाद को दैहिकी रूप प्रदान किया । अंततः शरीरवेत्ताओं की दैहिकी व्याख्या और दार्शनिकों के संवेदनात्मक मनोविज्ञान का समन्वय हो गया । इस समन्वय का प्रतिनिधित्व ब्राउन, लॉट्ज, हेल्महोल्ट्ज तथा वुंट का अनुभववादी मनोविज्ञान करता है जिसमें सहजज्ञानवाद का स्पष्ट खण्डन है। बीसवीं शताब्दी के मनोविज्ञान में प्राकृत बोधवाद की समस्या ने चेतना-क्रिया-विज्ञान एवं अनुभववाद ने व्यवहारवाद तथा संक्रियावाद का रूप ले लिया ।

—— x ——

PAPER III

कर्तव्य और दायित्व की नैतिक धारणा

कर्तव्य किसी भी नैतिक या वैधानिक जिम्मेदारी है, जिनका पालन सभी को देश के लिए करना चाहिए। ये एक कार्य या कार्रवाई है, जिसका पालन देश के प्रत्येक नागरिकों को अपनी नौकरी और पेशे की तरह करना चाहिए। प्रत्येक को देश के अच्छे नागरिक होने के साथ ही देश के प्रति वफादार भी होना चाहिए।

एक जिम्मेदारी एक कर्तव्य या कार्य है जिसे आपको करने की आवश्यकता है। दायित्व और जिम्मेदारी के बीच महत्वपूर्ण अन्तर यह है कि दायित्व उन कार्यों को संदर्भित करता है जिन्हें पूरा किया जाना चाहिए जबकि जिम्मेदारी एक कार्रवाई को संदर्भित करती है जिसके लिए आप जवाबदेह हैं।

कर्तव्य करने वाले और जिसके प्रति कर्तव्य किया जाता है दोनों में नैतिक सबंध रहता है। उदाहरणस्वरूप माता-पिता के प्रति कर्तव्य को लिया जा सकता है। माता-पिता का सेवा करना हमारा कर्तव्य है। सेवा हमारे कर्तव्य का विषय है और इस कर्तव्य करने वाले हैं। हम कर्तव्य जिसके प्रति करते हैं वे हमारे

माता-पिता हैं। कर्त्तव्य और जिसके प्रति कर्त्तव्य किया जायेगा दोनों ही छिपे रहते हैं। कर्त्तव्य ही हमें कर्म विशेष को करने का नैतिक बोध देता है।

अधिकार और कर्त्तव्य का बड़ा घनिष्ठ संबंध है। वस्तुतः अधिकार और कर्त्तव्य एक ही पदार्थ के दो पार्श्व हैं। जब हम कहते हैं कि अमुक व्यक्ति का अमुक वस्तु पर अधिकार है, तो इसका अर्थ यह भी होता है कि अन्य व्यक्तियों का कर्त्तव्य है कि उस वस्तु पर अपना अधिकार न समझकर उसपर उस व्यक्ति का ही अधिकार समझे।

अधिकार माँगने के पूर्व हमारा जो कर्त्तव्य है उसे जिस समय स्मरण रखते हैं और निष्ठा पूर्वक उसका पालन करते हैं उसी समय हमें बिना संघर्ष अपने आप अधिकारों की प्राप्ति हो जाती है।

अधिकार और कर्त्तव्य की माँग प्र-ही के आधार पर ही व्यक्ति के साथ समाज का बंधन है। समाज तो अलग है और थोड़ा बड़ा है लेकिन व्यक्ति के साथ उसके परिवार का जो बंधन है उसमें भी कर्त्तव्य और अधिकार का समावेश है।

जिस समय इन दोनों में से कोई एक नहीं रहता उस समय व्यवस्था बिगड़ जाती है और विद्रोह उठ खड़ा होता है। इसलिए इस बात का प्रयत्न किया जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्य का पालन करे। मनुष्य को यदि जीवन जीने का अधिकार प्राप्त है, तो उसका यह कर्तव्य भी है कि उसके जीवन यापन से किसी दूसरे को हानि न पहुँचे। यदि मनुष्य को शिक्षा पाने का अधिकार है तो समाज के प्रति उसका कुछ कर्तव्य भी है।

PAPER III

मानदंड क्या है?

समाज अपने सदस्यों के लिए कुछ निश्चित प्रकार के आदर्श, आचरण, या व्यवहार निर्धारित करता है, जिनका पालन करना उसके सदस्यों से अपेक्षित होता है। समाजशास्त्रीय भाषा मे इन्हें मानदंड कहा जाता है।

मानदंडों का अनुकरण कराने के लिए दंड व्यवस्था भी होती है। जोकि मानदंडों की गंभीरता के आधार पर तय होती है। यह सामाजिक रूप से निंदा करना, शारीरिक दंड या कानूनी प्रक्रिया जैसे रूप से निंदा करना, शारीरिक दंड या कानूनी प्रक्रिया जैसे रूपों में पाया जाता है।

मानदंड के प्रकार

मानदंड के दो प्रकार होते हैं —

(1) निर्देशात्मक मानदंड
(2) निषेधात्मक मानदंड

(1) निर्देशात्मक मानदंड → जिस मानदंड से हमारा आचरण निर्देशित होता है, उसे निर्देशात्मक मानदंड कहा जाता है।

(2). निषेधात्मक मानदंड → जिस मानदंड से हमारा आचरण निर्देशित होता है, उसे निर्देशात्मक मानदंड कहा जाता है और जो मानदंड हमें किसी आचरण को करने की इजाजत नहीं देता है, उसे निषेधात्मक

मानदंड कहा जाता है।
जैसे प्रत्येक आधुनिक समाज यह अपेक्षा करता है कि सार्वजनिक स्थानों पर किसी को नग्न नहीं घुमना चाहिए। यह एक निषेधात्मक मानदंड का उदाहरण है। लेकिन समाज यदि यह मानता है कि लोगों को अपने माता-पिता का सम्मान करना चाहिए तो यह निर्देशात्मक मानदंड है।
दूसरे शब्दों में समाज जो नहीं करने की इजाजत देता है, उसे निषेधात्मक मानदंड कहा जाता है। और जो लोग व्यवहार समाज अपने सदस्यों को खास ढंग से सम्पादन करने की अपेक्षा रखता है, उसे निर्देशात्मक मानदंड कहा जाता है।
निर्देशात्मक एव निषेधात्मक मानदंड में क्या फर्क है, इसे लेस्ली ने बहुत ही स्पष्ट ढंग से रखा है- निर्देशात्मक मानदंड निर्देश देता है जो लोगों को करना चाहिए और निषेधात्मक मानदंड लोगों को यह निर्देश देता है कि लोगों को क्या नहीं करना चाहिए।

———— x ————

PAPER III

प्रवृत्ति पर एक संक्षिप्त टिप्पणी

प्रवृत्ति इन्द्रियों के प्रति आसक्ति मोक्ष मार्ग, इच्छा तथा संकल्प संचालित क्रियाओं के अर्थ में प्रवृत्ति पर विचार किया जाता है। प्रवृत्ति का विश्लेषण करने का अर्थ है कर्म का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करना। यह विश्लेषण इस बात का द्योतक है कि भारतीय आचारशास्त्र के अंतर्गत नैतिक तथा अनैतिक क्रियाओं में अंतर स्थापित किया गया है। सभी प्राणियों के सारे कार्य सत् या असत् नहीं होते। संकल्प द्वारा उत्पन्न कार्य ही सत् या असत् होते हैं सारे मानव कर्म भी सत् और असत् नहीं हो सकते। जिन क्रियाओं में संकल्प - स्वातंत्र्य का अभाव रहता है, उनका नैतिक निर्णय नहीं हो सकता है।

न्याय वैशेषिक दर्शन में भी प्रवृत्ति की व्याख्या हुई है। प्रशस्तपाद के अनुसार मानव कर्म दो प्रकार के हैं - जीवनपूर्वक कर्म तथा इच्छा-द्वेष पूर्वक कर्म। जीवन पूर्वक कर्म वे हैं जो स्वतः संचालित होते हैं। ये कर्म शरीर के पोषण के लिए आवश्यक हैं। इन कर्मों का नैतिक मूल्यांकन नहीं होता है। इच्छा द्वेष पूर्वक कर्म में मनुष्य का संकल्प विद्यमान रहता है। इन कर्मों की उत्पत्ति संकल्प के द्वारा होती है। इन कर्मों का कोई-न-कोई निश्चित उद्देश्य होता है। हित की प्राप्ति एवं अहित का परिहार इनका उद्देश्य होता है। हित का प्राप्ति

का अर्थ है शुभ की प्राप्ति और अहित का परिहार का अर्थ अशुभ का निवारण। हित की प्राप्ति के लिए किए गए कर्म इच्छा-जनित होते हैं और अहित के परिहार के लिए किए गए कर्म द्वेषपूर्वक कर्म होते हैं।

विश्वनाथ भट्ट के अनुसार कर्म तीन प्रकार के होते हैं - प्रवृत्ति, निवृत्ति और जीवन योनि कर्म। जीवन योनि कर्म स्वतः चालित होते हैं। प्रवृत्ति और निवृत्ति ऐच्छिक कर्म हैं। प्रवृत्ति में शुभ की प्राप्ति विद्यमान रहती है। निवृत्ति में अशुभ के निवारण की इच्छा विद्यमान रहती है। प्रवृत्ति ~~और निवृत्ति~~ में संकल्प स्वातंत्र्य की चेतना रहती है। ऐच्छिक कर्म में संकल्प स्वातंत्र्य का भाव रहता है। प्रवृत्ति का प्रभाकर ने बड़ा सुन्दर विश्लेषण किया है - (क) कार्यता ज्ञान, (ख) चिकीर्षा, (ग) प्रवृत्ति, (घ) क्रिया।

प्रवृत्ति में करनेवाले का कार्य का पूरा ज्ञान रहता है। कार्य करने की चेष्टा के पूर्व कार्य का ज्ञान आवश्यक रहता है। पुनः किसी हित-लाभ के उद्देश्य से ही हम कार्य करते हैं। इस प्रकार कार्य में अहित की चेतना का अभाव रहता है।

इष्ट-साधनता:- ज्ञानावस्था के बाद कृति साध्यता ज्ञानवस्था का आगमन होता है। कोई कार्य इन्हीं दो अवस्थाओं में संपादित नहीं होता है। हम कार्य करने की अपनी शक्ति पर भी विचार करते हैं। जिस कार्य को

करने की शक्ति हममें नहीं रहती है उस कार्य को करने का संकल्प हम नहीं करते हैं। अतः कार्य करते समय कृति साध्यता ज्ञान का वर्तमान रहना आवश्यक है।

प्रवृत्ति के उपर्युक्त विश्लेषण तथा पाश्चात्य दार्शनिकों के द्वारा दिए गए ऐच्छिक क्रिया के विश्लेषण में पर्याप्त समता है। भारतीय दार्शनिकों के अनुसार भी मानसिक एवं शारीरिक अवस्थाओं में प्रवृत्ति रहती है।

— x —

PAPER III

पुरुषार्थ किसे कहते हैं

पुरुषार्थ का सिद्धान्त भारतीय आचार-शास्त्र में एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है। वह एक मौलिक सिद्धांत है। पुरुषार्थ लोगों को समाज में क्रिया करने का मार्गदर्शन करता है। मनुष्य का उद्देश्य संसार में सुखी जीवन व्यतीत करना है। हिन्दू धर्म में पुरुषार्थ से तात्पर्य मानव के लक्ष्य या उद्देश्य से है। पुरुषार्थ = पुरुष + अर्थ = अर्थात् मानव को 'क्या' प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। वेदों में चार पुरुषार्थ का नाम लिया गया है।

(1) धर्म
(2) अर्थ
(3) काम
(4) मोक्ष

इसलिए इन्हें 'पुरुषार्थ-चतुष्टय' भी कहते हैं। महर्षि मनु पुरुषार्थ चतुष्टय के प्रतिपादक हैं।

चार्वाक दर्शन केवल दो ही पुरुषार्थ को मान्यता देता है- अर्थ और काम। वह धर्म और मोक्ष को नहीं मानता। महर्षि वात्स्यायन भी मनु के पुरुषार्थ चतुष्टय के समर्थक हैं किन्तु वे मोक्ष तथा परलोक की अपेक्षा धर्म, अर्थ, काम पर आधारित सांसारिक जीवन को सर्वोपरि मानते हैं।

योगवसिष्ठ के अनुसार सज्जनों और शास्त्र के उपदेश अनुसार चित्त का विचरण ही पुरुषार्थ कहलाता है। भारतीय संस्कृति में यह चारों पुरुषार्थों का विशिष्ट स्थान रहा है। वस्तुतः इन पुरुषार्थों ने

ही भारतीय संस्कृति में आध्यात्मिकता
के साथ भौतिकता का एक अद्भुत
समन्वय स्थापित किया है। धर्म, अर्थ,
काम ये तीनों पुरुषार्थ को अच्छी तरह
कर लेने से ही मोक्ष की प्राप्ति सहज
हो जाती है।

— x —